ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हो शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट-घट में डोले।
एक राम निर्गुन से न्यारा, एक राम का सकल पसारा।।

वर्ष 58 | जुलाई–अगस्त 2012 | अंक 4

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय -सूची

(जुलाई-अगस्त 2012)

क्रमांक			पृष्टांक
1.	गजल		01
2.	प्रेमी ईश्वर से कुछ नहीं चाहता	.दादागुरु की देन	02
3.	हर अगला कदम प्रभु के पास	प्रवचन गुरुदेव	05
4.	वास्तविक आनंद कहाँ है.	अध्यक्षीय सदुपदेश	10
5.	खुश रहने में गुरुमंत्र	गुरुकृपा	18
6.	शान्ति एवं परमानंद की प्राप्ति	विवेक विचार	23

राम ॐ संदेश

भक्ति ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

डा. करतार सिंह, अध्यक्ष आचार्य

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

वर्ष 58 ✡ द्विमासिक पत्रिका ✡ जुलाई–अगस्त 2012 ✡ अंक 04

प्रभजू तो कह लाज हमारी

नीलकंठ नर हर नारायण, नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेसर, सुआमी पावन पौन अहारी।
माधव महा मोह मद मर्दन, मान मुकंद मुरारी।
निरविकार निर्जुर निद्रा बिन, निरबिख नरक निवारो।
किरपा सिन्ध काल त्रै दरसी, कुकृत परनासन कारी।
धनुर्पान धृतमान धराधर, अन बिकार असधारी।
हॉ मत मन्द चरण सरनागत, कर गह लैहु उबारी।

दादागुरु की देन

हमारे गुरुदेव की जीवनलीला के कुछ और दृष्टांत

1) महात्मा जी की आदत थी कि सबको भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करते थे और वही खाना खाते थे जो रसोई में सबके लिये बनता था। एक बार भण्डारे के अवसर पर कुछ लोग खाना खा चुके थे और कुछ लोग बाक़ी थे। आपने मुझे बुलाकर पूछा – क्या अमुक सज्जन ने खाना खा लिया? मैंने निवेदन किया – ''अभी नहीं।'' फिर दूसरे सज्जन के विषय में पूछा। मैंने फिर निवेदन किया कि उन्होंने भी नहीं खाया है। आपने पूछा – ''क्या तुमने खा लिया?'' मैने कहा कि खा लिया। आप मौन हो गये, चेहरा तमतमा गया, जिससे मालूम होता था कि बहुत नाराज़ हैं और मेरी तरफ़ से मुँह फेर लिया। इससे मुझको हमेशा–हमेशा के लिय नसीहत हो गयी।

2) जब सब सो जाते थे तब वे सोते थे और विशेष दशाओं के अतिरिक्त सबके साथ ही सोते थे। एक बार रात के बारह बजे, जब सब सो गये, वे सोने के लिये आये। कहीं जगह न थी। मैं जाग रहा था। मैंने अपनी जगह से उठना चाहा तो उन्होंने इशारा किया कि लेटे रहो और मेरे जूतों को हटाकर दरी को ठीक किया। वे उस जगह लेट रहे। रात को तीन बाजे सर्दी के कारण मैं सिकुड़ा हुआ पड़ा था। उन्होंने अपनी चादर मेरे ऊपर डाल दी और स्वयं अन्दर कोठरी में चले गये। यह घटना दूसरे एक भाई ने सुनाई जो उस वक्त जाग गये थे और यह सब देख रहे थे।

3) एक बार मैं महात्मा जी के दर्शन के लिए फ़तेहगढ जा रहा था। गर्मी का मौसम था और रात का समय। मुझको कै और दस्त शुरु हो गये। हालत बहुत ख़राब हो गई और जान पड़ता था कि आख़िरी

वक्त है। कमज़ोरी की हालत में सीट के नीचे पड़ा रहा, तमाम कपड़े गन्दगी से सने हुए थे। शिकोहाबाद स्टेशन पर मालूम होने पर गाड़ी से उतार दिया गया। डाक्टर बुलाये गये। सुबह तक हालत कुछ ठीक हुई और नौ बजे के लगभग फ़तेहगढ़ पहुँचा। डाक्टर श्यामलाल जो पहले से पहुँचे हुए थे, उनके पास सोये हुए थे। उन्होंने बताया कि रात को ग्यारह बजे के लगभग महात्मा जी अचानक सोते से जाग पड़े। बड़े परेशान थे और उस परेशानी में छत पर जल्दी–जल्दी टहलने लगे। उस परेशानी की दशा में माता जी ने पूछा कि ''आप क्यों परेशान है ?'' उत्तर दिया – ''तुम मेरी परेशानी की वजह नहीं समझ सकती''। इसी तरह सबेरे तक छत पर टहलते रहे। जब मैं फ़तेहगढ़ पहुँचा तो आपने डाक्टर साहब से कहा कि ''श्रीकृष्ण बहुत बीमार है। उसको ले जाकर खाट पर लिटा दो और खाने को कुछ न देना।''

4) एक बार डाक्टर चतुर्भुज सहाय का पत्र आया। उस पत्र में लिखा था कि मैं सेवा में आना चाहता था लेकिन कुछ कारण ऐसे है कि नहीं आ सकता। महात्मा जी ने वह पत्र मुझको दिया और पूछा ''क्या बता सकते हो कि क्या कारण हो सकते हैं ?'' मैंने निवेदन किया कि मैं नहीं कह सकता। कहने लगे कि इस वक्त उनके पास रुपया नहीं है। अपनी माँ (मेरी गुरुमाता) से रुपया लेकर उनके पास भेज दो।'' जब रुपया भेजने जाने लगा, आपने पूछा ''कितना रुपया ले जा रहे हो ?'' मैंने निवेदन किया कि पन्द्रह रुपये ले जा रहा हूँ, दो रुपये घर के ख़र्च के लिये छोड़ दिये हैं। आपने कहा, ''ये दो रुपये भी भेज दो, हम क़र्ज़ लेकर गुजारा कर लेंगे।'' मैंने जाकर अपनी गुरुमाता से शेष दो रुपये भी ले लिये और सारे रुपये डाक्टर साहब को मनीआर्डर द्वारा भेज दिये।

अपनी गुरुमाता में मैंने दैवीय गुण देखे थे। उन्होंने आजीवन महात्मा जी के साथ सहयोग किया। आर्थिक अथवा अन्य परिस्थितियों में सदा महात्माजी का समर्थन करती थीं। उनके शिष्यों को वे

पुत्रवत प्रेम करती थीं। महात्माजी के निर्वाण के बाद भी आजीवन उन्होंने इसे निबाहा।

5) एक बार वे किसी बात पर रूष्ट हो गये। पत्र आया, लिखा था – मेरी तबियत ख़राब है लेकिन मैं नहीं चाहता कि तुम आओ। मैं तुम्हारी शक्ल देखना नहीं चाहता।'' दूसरा पत्र उन्होंने एक अन्य सज्जन को लिखा जिसमें लिखा था कि मैं बीमार हूँ, मुझसे मिल जाओ। दूसरे दिन मोटर से हम दोनों फतेहगढ़ को चल दिये। जून का महीना था, बड़ी गर्मी थी, दोपहर के लगभग एक बजे फतेहगढ़ पहुँचे। मेरे साथी महात्मा जी के घर में गये। मैं बाहर ही रहा क्योंकि मेरे लिये आज्ञा नहीं थी। तीन बजे के लगभग महात्मा जी ने उन से पूछा – क्या श्रीकृष्ण भी आया है? जब मालूम हुआ कि सेवक भी आया है तब वे बाहर पधारे और बड़े प्यार भरे अन्दाज और मीठी आवाज़ में बोले – ''अन्दर क्यों नहीं आते? बाहर क्यों खड़े हो?'' और तमाम नाराज़गी जाती रही।

6) एक बार मैं रात को फ़तेहगढ़ पहुँचा। महात्मा जी अन्दर कमरे में सो रहे थे। अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी क्योंकि मौलवी साहब (मुन्शी अब्दुलग़नी साहब) भी वहीं सो रहे थे। मुझको दर्शन की बड़ी इच्छा थी और मैं उसी इच्छा में सो गया। स्वप्न में देखा कि मैं कमरे के अन्दर गया हूँ लेकिन महात्मा जी पलंग पर नहीं हैं। बल्कि केवल प्रकाश ही प्रकाश है, शरीर कोई नहीं है, सबेरे को जो कुछ मैंने देखा निवेदन कर दिया। उन्होंने कहा – ''तुमने सही देखा। मेरा शरीर तुम्हारा गुरु नहीं है, बल्कि जो प्रकाश तुमने देखा वही तुम्हारा गुरु है।''

7) कॉंग्रेस के आन्दोलन का ज़माना था। कॉलेज के लड़के कॉलेज छोड़कर देश की सेवा के लिए आ रहे थे। मैं चौथे साल में पढ़ता था। मैं भी कॉलेज छोड़कर घर आ गया ताकि देश की सेवा करूँ। घर में तमाम बड़े नाराज थे और कहते थे कि अच्छा नहीं किया। महात्माजी ने कोई नाराज़गी नहीं दिखाई बल्कि इसको अच्छा

बताया। बाद को कई रोज़ तक प्रोग्राम बनता रहा कि किस तरह काम शुरू किया जाय? एक दिन मुझसे पूछा कि ''काम हमारे साथ करोगे कि अकेले''? मैंने निवेदन किया कि आपके बग़ैर कैसे काम कर सकूँगा? आपने कहा कि ''हम भी जल्दी ही काम छेड़ेंगे''। दूसरे रोज़ कहने लगे कि हमारा काम अभी छेड़ना ठीक नहीं है, दो महीने बाद छेड़ेगे तब तुमको बुला लेंगे। इसी उम्मीद में मैं ख़ुशी–ख़ुशी कॉलेज वापस आ गया और कोर्स पूरा हो गया।

8) एक बार घर में कुछ ऐसी घटनायें हुई कि जिनके कारण मुझको मेडीकल कॉलेज छोड़ना पड़ा। जब वापिस आया, सभी रिश्तेदार परेशान थे। लेकिन आपने कुछ नहीं कहा और कहा भी तो यही कहा कि जब यह हालत है तो पढ़ना बेफ़ायदा है। दो–चार दिन बाद एक रोज़ वे टहलने जा रहे थे, मैं साथ था। आप परेशान थे। मैंने कारण पूछा। उन्होंने कहा – ''हमारी ज़िन्दगी का भरोसा नहीं, कब मौत आ जाय। हमारा ख़्याल था कि हमारे मरने के बाद तुम घर की देखभाल करोगे, अब तुमने कॉलेज छोड़ दिया, अपने ही घर की देखभाल नहीं कर सकोगे, हमारे घर की देखभाल क्या करोगे और वही वजह परेशानी की है। मैने निवेदन किया कि क्या मैं फिर वापस चला जाऊँ? आपने कहा – ''हम यही चाहते हैं।'' और मैं वापस आ गया वर्ना डाक्टर कैसे बनता।

9) एक बार महात्मा जी आगरे पधारे थे। टहलने के लिये दयालबाग की तरफ़ गये। रास्ते में एक क़ब्रिस्तान था और उसी जगह एक बुजुर्ग साहब की मज़ार (समाधी) थी। आप अकेले उस मज़ार पर गये। एक घंटे बाद वापिस आये और कहने लगे – ''यह अपने वक्त के एक बड़े बुजुर्ग थे। माथुर कायस्थ थे लेकिन मुसलमान हो गये थे। जो हालत दस वर्ष पहले जज़्ब की थी वही आज भी है। करीब दस वर्ष हुए मैं उर्स (भण्डारे) पर आया था। लोगों पर जज़्ब तारी (भावावेश) था। मुझको इसमें विश्वास नहीं था और इम्तहान लेने के ख़्याल से जैसे ही मैंने कठड़े में कदम रखा, मेरी हालत तब्दील हो गई और सोज़ (रोना) जारी हो गया। बहुत

कोशिश करने पर भी सकून न हुआ, लेकिन ज्यों ही मैं कठड़े से बाहर हुआ हालत फिर तब्दील हो गई और वही कैफ़ियत आज भी हुई है।

एक साहब ने पूछा –''साहब जी महाराज के बारे में आपका क्या ख़्याल है?'' आपने कहा –''वे बहुत बड़े बुजुर्ग (महापुरुष) हैं जिनके ज़िम्में रूहानी, इख़लाक़ी, सोशल, पोलीटिकल (आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक व राजनैतिक) बहुत सी ज़िम्मेदारियां है और मेरे ज़िम्मे तो सिर्फ़ रूहानी तालीम है और वह भी बहुत थोड़े आदमियों की। मैं आजिज़ (दीन) भला उनकी निस्बत क्या राय क़ायम कर सकता हूँ।''

10) उनकी नसीहतें ताज़िन्दगी काम आती रहती थी। सेवक की बड़ी इच्छा थी कि उपकार का काम करे। महात्मा जी ने समझाया कि ''उपकार का काम बड़ा अच्छा है लेकिन यह तब करना चाहिये जब आदमी अपने को बना ले। अगर इससे पहले करेगा तो अपना भी और दूसरों का भी नुकसान करेगा। अगर कोई आदमी डूब रहा हो तो उसके बचाने के लिए किसी अच्छे तैराक को ही कोशिश करनी चाहिये वर्ना डूबते को तो क्या बचायेगा, खुद भी डूब जायेगा।''

एक दिन महात्मा जी ने कहा कि आदमी को अपना क़र्ज़ा ज़िन्दगी में अदा कर देना चाहिये और न कर सके तो मरने से पहले ही माफ़ करवा लेना चाहिये। फिर कहा कि रुपया लेना क़र्ज़ा नहीं है बल्कि अपने फ़र्ज़ों की अदायगी (कर्तव्य पालन) भी क़र्ज अदा करना है। जैसे धरती माता का, माँ बाप का, गुरु ब्राह्मण का, अपने कुल, समाज और देश का ऋण, कानूनों की पाबन्दी आदि।

11) बचपन में मेरे एक दोस्त थे जिनसे मुझको हार्दिक प्रीति थी। जब मैं लालाजी की सेवा में गया तो मैंने निवेदन किया कि जो कुछ आप आज्ञा देंगे वह मैं करने को तैयार हूँ। पर उस दोस्त को नहीं छोड़ सकता। उन्होंने कहा कि ''हम नहीं छुड़ायेंगे।'' कुछ साल बीतने पर जब उसकी मौहब्बत मुझको परेशान करने लगी तो मैंने

फिर निवेदन किया। आपने पत्र लिखा कि ''तुमने हमसे वायदा लिया था इसलिये हमने इस मामले में दख़ल (हस्तक्षेप) नहीं किया, लेकिन अब आगे के लिये उसकी मौहब्बत तुम्हें न सतायेगी''। और हुआ भी ऐसा ही।

ऐसी ही एक घटना और हुई। एक स्त्री, जो परमार्थी विचारों की थी, मरीज की हैसियत से मेरे पास आया करती थी। मुझको अपनी अल्प बुद्धि से यह विचार आया कि यह सत्संग के काम में बड़ी सहायक होगी और इसी कारण मैं उसे मौहब्बत की तवज्जोह देता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको प्रेम पैदा हो गया और मुझको भी बराबर ख़्याल रहने लगा। मैंने घबराकर तमाम हाल लालाजी को पत्र द्वारा बताया। उत्तर में आपने लिखा –''यह तुमने अच्छा नहीं किया। मैं दुआ करूँगा और उम्मीद है कि परमात्मा मदद करेगा।'' कुछ दिनों बाद उस स्त्री को स्वप्न में एक महापुरुष दिखाई दिये जिन्होंने हिदायत दी कि तुम उससे (मुझसे) सम्बंध तोड़ दो वर्ना तुमको नुकसान पहुँचेगा। और इस प्रकार ताल्लुकात अपने आप ही बिल्कुल ख़त्म हो गये।

(डा. महेश चन्द्र द्वारा प्रस्तुत 'जीवन चरित्र' से उद्धृत)

प्रवचन गुरुदेव

गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम

निराकार, दयालदेश का मालिक और देहधारी गुरु, सब एक ही हैं। सबका समान आदर और एक समान उपासना होनी चाहिए। यह कैसे मुमकिन है कि हम गुरु को प्यार करें मगर दयाल पुरुष और ख़ानदान (परम्परागत गुरु–वंश) के बुजुर्गो से प्यार न हो। अगर सत्संगी भाइयों में आपस में प्यार नहीं हो तो यह जरूर अलामत है कि उन्हें Centre यानि अपने गुरु से प्यार नहीं है। इसी तरह जितनी मज़हबी किताबें हैं उन सब में एक सी ही श्रद्धा हो। कुरान शरीफ़ में एक आयत आई है – ''ऐ मौहम्मद, तेरे जैसे बहुत पैग़म्बर पैदा हुए है जिनमें से बहुतों की तुझे खबर है और बहुतों की नहीं सब मुसलमानों से कह दो कि सब पैगम्बरों की एक सी इज़्ज़त करो''। हमारे यहाँ भी ये ज़रूरी है कि सारे अवतारों, सन्तों और रुहानी रहनुमाओं (आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक) का सम्मान करें और सभी के धार्मिक ग्रंथों को समान आदर भाव से देखें।

जिज्ञासु कौन है

असली Candidate यानि जिज्ञासु कौन है ? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची ख़्वाहिश और तड़प है और जिन्दगी से बेज़ार है (ऊब गया है)। मौजूदा हालत चाहे उसकी कुछ भी हो, चाहे वह अच्छे आचरण का हो या न हो, अगर उसमें प्रेम है, तड़प है तो वही उसे हर हालत से निकालकर ले जायेगी। यह मार्ग प्रेम का है। अगर आपके दिल में गुरु का प्रेम है तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह आपसे प्रेम करेगा। जब हालत ऐसी बन जाये की उससे निरन्तर प्रेम की डोर लगी रहे और हर वक्त उसका ख़्याल बना रहे तो दुनियाँ के ख़्याल आते भी रहे तो उसका कोई हर्ज नहीं होगा। अगर ऐसा अभ्यासी गुरु के दर्शन को न भी जा पाये तो भी कोई हर्ज़ नहीं है, लेकिन जिनको अभी प्रेम पैदा नहीं हुआ

है और फ़ायदा उठाना चाहते हैं, तो ऐसे लोगों के लिए यह जरूरी है कि तीन चार महीने में एक बार गुरु के पास जाते रहें। कुछ वक्त भले ही ज्यादा लग जाये लेकिन फ़ायदा होगा।

गुरु से नाता जुड़ने की और प्रेम की खास पहचान यह है कि जो ख़्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य को भी आये। फिर उस ख्याल को खत के ज़रिये या मिलने पर Confirm (पुष्टि) कर लें। इसका मतलब यह है कि शिष्य का निजी रूप जागृत अवस्था में आ गया है और गुरु की तालीम (शिक्षा) कबूल कर रहा है। लेकिन एक बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि कितना ही आपका अनुभव खुल जाये, अन्दर से कितने भी Direction (आदेश) मिलें, लेकिन शैतान बड़ा ज़बरदस्त है, वह कभी भी धोखा दे सकता है। इसलिए अभ्यासी चाहे कितना भी ऊँचा हो और ख़्याल से गुरु की कितनी भी नज़दीकी हो लेकिन साल में तीन चार बार गुरु के दर्शन अवश्य कर लेना चाहिये।

आपके सिलसिले में ही नहीं बल्कि हरेक सिलसिले में, गुरु की बहुत Importance (महत्ता) है। गुरु के निजी रूप का, नूरानी या प्रकाश रूप का, ध्यान किया जाता है। चाहे ध्यान में पहले उसका Physical body (स्थूल शरीर) दीखता हो, मगर वह नूरानी (प्रकाश रूप) है। अगर सिर्फ गुरु की तस्वीर का ध्यान करते हो तो मूर्ति पूजा हो गई, जिसका ध्यान करोगे वही मिलेगा। इज़्ज़त के तौर पर घर में तस्वीर का रख लेना और बात है। गुरु के सामने बैठकर भी उनके नूरानी रूप (प्रकाश रूप) का ध्यान किया जाता है। वही प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे जाकर सत्तपुरुष से मिला देता है।

आगे की अवस्थायें

तीन फ़नाइयतें (लय–अवस्थाएं) है। पहले अपने आपको गुरु में लय करो, फिर अनामी पुरुष में और फिर ईश्वर में। मुसलमानों में भी यही बात है 'ला इलाह इल्लिल्लाह' अर्थात् कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के। पहले अपने आपको अपनी पीर मुर्शिद में, फिर रसूल में और फिर अल्लाह में फ़ना कर दो क्योंकि सिवाय उसके और कुछ (सत्य) नहीं है। लेकिन रसूल का मतलब सिर्फ़ हज़रत मौहम्मद साहब से नहीं है। हिन्दु

ग्रन्थों में भी राम या ईश्वर की उपासना को भी उतनी ही मुख़्यता दी गई है। राम तो अपने हर रूप में पूज्य हैं।

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट-घट में बोले।
एक राम का सकल पसारा, एक राम तिर्गुण से न्यारा॥

हमारा लक्ष्य तो वह राम है जो तिर्गुण से न्यारा है। वह अरूपा है, अलख है, अगम है, सन्तों का यही आधार है। इसी तरह नूरे मौहम्मद असली रसूल है, वही सबका आधार है पहले स्थूल–गुरु का ध्यान आता है फिर वही प्रकाश–गुरु के ध्यान में बदल जाता है। पहले फ़नाइयत (लय) गुरु में होती है, जब प्रकाश रूप में गुरु से मदद मिलने लगती है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि रास्ता ठीक है और चाल सही है।

जब ऐसा परिचय मिलने लगे तब यह विश्वास करें कि गुरु पूर्ण है। इसी को प्रतीति कहते है। जब तक गुरु का सत्संग नहीं करेगा तब तक प्रीत पैदा नहीं होगी। बिना प्रीत के प्रतीति यानी विश्वास नहीं पैदा होगा और बिना गुरु में विश्वास आये ईश्वर में विश्वास नहीं होगा। मगर प्रतीति आने के बाद भी अभ्यासी गिर जाते हैं। इसका कारण यह है कि माया बड़ी प्रबल है। उसने तमाम ब्रह्माण्डों पर पर्दा डाल रखा है, सबको भ्रमा रखा है। यह परमात्मा की बड़ी कृपा है कि वह गुरु के ज़रिये मनुष्य को इसके जाल से निकाल देता है, वरना आदमी की अपनी क्या ताकत है जो इसके जाल से निकल सके।

कई और तरीकों में सिर्फ रास्ता बताया जाता है और अभ्यास कराया जाता है लेकिन हमारे यहाँ इससे आगे भी कुछ और है। गुरु अपनी कृपा, तवज्जोह और इच्छाशक्ति से शिष्य के सतोगुणी मन को, अपने मन में मिलाकर ऊपर ले जाता है, जिससे शिष्य की आत्मा थोड़ी देर के लिए बाहरी वातावरण से उठकर ब्रह्माण्डी मन का आनंद लेने लगती है और इस तरीक़े से तरक्की बहुत जल्दी होती जाती है।

अगर किसी ने गुरु से निस्बत हासिल कर ली है तो वह दूर बैठे भी फ़ायदा उठा सकता है। हमें एक वाक़ा (घटना) याद आ गया। जब हम फ़तेहगढ़ में हाई स्कूल में पढ़ते थे तो एक दिन हमारे पैर में चोट

लग गई। गुरुदेव उन दिनों कानपुर गये थे। उन्हें घर न पाकर हमें बहुत अफ़सोस हुआ। जब अपने घर गये तो पिताजी ने मारा। बोर्डिंग हाउस में आये, जहाँ हम रहते थे, तो रात हो गई और हमारे पैर में दर्द हो रहा था। हमने स्टूल पर पैर रखकर गरम पानी से सेंकना शुरू किया। इतने में होस्टल के सुपरिटेंडेंट आ गये और नाराज होने लगे कि स्टूल को खराब मत करो। दो चार सख़्त बातें भी उन्होंने कही।

सबेरे इम्तहान था। हमें बहुत दुःख हुआ कि हमारा तकलीफ़ के मारे यह हाल है और कोई हमारा हमदर्द नहीं हैं। अगर एक हमदर्द है भी तो वह यहाँ नहीं है। हम अपने गुरुदेव की याद करके रोने लगे और रोते–रोते नींद आ गई। सबेरे जब उठे तो दर्द कम था और हालत अच्छी थी। इम्तहान भी सही से दे दिया। जब गुरुदेव लौटकर आये और हम दर्शन करने गए तो बड़े प्रेमपूर्वक पूछा – उस रात तुम इतने परेशान क्यों थे? हम संध्या करा रहे थे और तुम सामने आ गये। हमने तवज्जोह दी और तुम वहाँ से चले गये।

कहने का मतलब यह है कि जब निरन्तर प्रेम का सम्बंध गुरु और शिष्य के बीच स्थापित हो जाता है तो एक के विचार दूसरे के ऊपर उतर जाते हैं। गुरु रूप में परमात्मा आकर हमारी सहायता करता है, मगर शर्त यह है कि प्रेम सच्चा हो, कोई ग़रज़ (स्वार्थ) न हो और अगर ग़रज़ हो भी तो प्रेम पाने की ख़्वाहिश हो। गुरु का प्रेम ही ईश्वर प्रेम में बदल जाता है। हमें जो फ़ायदा हुआ वह प्रेम से ही हुआ। हमें अगर कभी तकलीफ भी होती थी तो हम कभी उन्हें ख़बर नहीं करते थे। वे ख़ुद ही चले आते थे। अगर सच्चा प्रेम है तो ईश्वर ख़ुद ही खिंचा चला आता है। हमारे गुरुदेव क्या थे? जो कुछ थे बस वे ही जानते है। अगर ख़ुदा कहूँ तो कुफ्र आयद होता है (पापी कहलाता हूँ) उन्होंने हमसे कई बार कहा ''जो चाहे सो माँग लो लेकिन हमने उनसे कुछ न माँगा।

परमार्थ के काम में जल्दबाज़ी नहीं होती। Full determination (दृढ़ निश्चय) होना चाहिये। कुछ हर्ज़ नहीं अगर तरक्की नहीं होती है। जब चल पड़ो तब चलते जाओ, रास्ते से मत हटो एक न एक दिन अपनी मंजिल तक जरूर पहुँच जाओगे। कामयाबी शर्तिया होगी। सभी शुरु में नकल करते हैं, असल यानि यथार्थ तो बाद में आती है। सच्ची भक्ति

कोई–कोई बिरला ही करता है। लड़कियाँ बचपन में झूठा ब्याह रचाती हैं। फिर एक दिन अपना ब्याह भी कर लेती है। कभी भी, किसी भी हाल में गुरु के दरवाज़े से न हटे। किसी ने कहा भी है कि *'द्वार धनी के पड़ रहे, धका धनी का खाय।'* मुसीबतें आती है, गुरु इम्तहान भी लेते हैं, मगर चाहे कुछ भी मिले, सुख या दुख, वह हरदम तुम्हारा ध्यान रखते हैं दुनियाँ के काम करते हुए भी सबसे ज्यादा उसी को तरजीह (प्राथमिकता) दो और सबसे ज्यादा अजीज (सर्वप्रिय) बनाये रखो।

गुरु में प्रीति और प्रतीति आये बिना उन्नति नहीं होती

समझते हो गुरु को मनुष्य और चाहते हो कि वह ईश्वर का दर्शन करा दें। पहले गुरु की प्रीति करो और उसकी बात पर विश्वास करो तब प्रतीति पैदा होगा बिना प्रतीति के गुरु को ईश्वर नहीं समझोगे और जब तक यह भाव नहीं आयेगा तब तक ईश्वर का अनुभव कैसे होगा ? दोनों का Medium (माध्यम) जब तक एक नहीं होगा तब तक दर्शन नहीं होंगे। जब तक यह शंका है कि 'यह तो इन्सान है, दर्शन करा भी सकेंगे या नहीं', मौजूद है तब तक गुरु राग़िब (कृपा दृष्टि करने वाला या कृपानिधाान) नहीं होता। जब तक गुरु राग़िब नहीं होगा तो दर्शन कैसे होंगे ? गुरु में चाहे सब कुछ सामर्थ्य हो, जब तक शिष्य में गुरु के प्रति प्रीति और प्रतीति नहीं होगी तब तक पूरा फायदा नहीं होगा। इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि 'जो जिस भाव से मुझे भजता है उसी रूप में मैं उसे दर्शन देता हूँ।' संत कबीर कहते है –

'गुरु को मानुष जानते, कबिरा से नर अन्ध'

पढ़े लिखे को विश्वास बड़ी मुश्किल से होता है। जब अक्ल उल्टा समझती है तो अविश्वास हो जाता है और आदमी यह समझने लगता है कि जैसे यह ढ़ोंग बना रखा है, एक जमात एकठ्ठी कर रखी है, वगैरा। शिष्य की इस भावना को गुरु समझता है और यह जानता है कि इसे विश्वास नहीं है, लेकिन खोलकर नहीं कहता। उसके हृदय में शिष्य की भलाई निहित होती है। वह सोचता है कि इस ओट में कुछ करता तो है। अगर

साफ़ कह दिया जायेगा तो यह इतना भी नहीं करगा और जो थोड़ा बहुत रास्ता चल रहा है, उससे भी विमुख हो जायेगा।

इसीलिए कहा गया है कि गुरु से सच्ची प्रीति और प्रतीति हुए बिना परमार्थ में पूरा लाभ नहीं होता।

• • •

अध्यक्षीय सदुपदेश

विवेक और वैराग्य - साधना का अभ्यास

सामान्यतः सब साधक यही कहते हैं कि उनका मन स्थिर नहीं होता है। वीर अर्जुन भी भगवान से यही प्रश्न करता है कि भगवान मेरा मन नहीं लगता है। भगवान कहते है, 'अर्जुन, मुट्ठी में वायु बन्द की जा सकती है परन्तु मन को काबू में करना कठिन है।' अर्जुन पूछता है कि कोई उपाय तो होना चाहिए। भगवान सरलता से उत्तर देते हैं, 'सच्चे जिज्ञासु को वैराग्य एवं विवेक के अभ्यास का साधन करना चाहिए।'

वैराग्य से पहले विवेक का अभ्यास किया जाता है। बिना विवेक के वैराग्य सधता ही नहीं है। वैराग्य का अर्थ घर से भाग जाना नहीं हैं। असंतुष्टि के कारण घर छोड़ देना तो वैराग्य नहीं है। पहला चरण है विवेक का, हंस गति का। हंस क्या करता है–मोती और कंकड़ में से मोती चुन लेता है कंकड़ छोड़ देता है। दूध में से दूध पी लेता है, पानी छोड़ देता है। यह उसकी सहज अवस्था है, स्वभाव ही है। यह एक पक्षी का स्वभाव है परन्तु भगवान ने मनुष्य को चेतना दी है कि उसकी विवेक गति (Power of Discrimination) बहुत तीव्र होनी चाहिए, परन्तु है नहीं।

मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में इतना ग्रस्त हो रहा है कि विवेक क्या होता है इसका उसको आभास ही नहीं होता है। विवेक के अर्थ हैं जैसे हम भोजन कर रहे हैं तो जुबान के रस के कारण हम अधिक खा जाएं तो यह अविवेक है और जिसको विवेक है और खाने के ज़ायके पर नियंत्रण है वह उतना ही खाएगा जितना कि आवश्यक है। जिसका विवेक सध गया है वह बोलेगा बहुत कम, आवश्यकता के अनुसार बोलेगा क्योंकि वह जानता है अधिक बोलने से लड़ाई झगड़े उत्पन्न हो जाते हैं, ग़लतफ़हमी उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए विवेकी साधक आवश्यकता अनुसार बोलता है। इसी प्रकार शब्दों का प्रयोग सोच समझकर करेगा, ऐसे शब्दों का प्रयोग करेगा जिससे दूसरों को

दुख न पहुँचे, मधुरता से बोलेगा। परन्तु हम लोग वाणी पर, विचार पर, व्यवहार पर कोई निगाह नहीं रखते इसीलिए हमारा विवेक सधता नहीं। विवेक का और विस्तार करें तो जो व्यवहार,जो विचार हमारे अहित में है उसका सहज में त्याग करना हमारा स्वभाव बन जाएगा।

जो व्यवहार और विचार हमारे हित में हों उन्हें सहजता से अपनाएं और आगे बढ़ेगें तो जो विचार हमें आत्मा या अपने इष्टदेव की ओर ले जायेंगे हम उसी को अपनायेंगे, अन्य सबका त्याग करते चले जाएँगे। विवेक का अन्तिम चरण यह है कि हमें आत्मिकता व अनात्मिकता में अन्तर मालूम होने लगे। हम आत्मा को पकड़े एवं अनात्मिकता का त्याग करते चले जाएँ। जब यह विवेक सध जाता है तब वैराग्य का साधन शुरु होता है।

वैराग्य का अर्थ है बे–राग हो जाना। राग के दो रूप हैं – राग और द्वेष। दोनों का ही त्याग करना है। राग भी बन्धन है, मोह भी बन्धन है। द्वेष तो बन्धन है ही । पहले द्वेष को छोड़ने का प्रयास करते है। फिर राग या मोह को छोड़नें का प्रयास करते हैं। फिर दोनों का त्याग कर देते हैं। सम अवस्था में चले जाते हैं। सच्चा प्रेमी जो है उसके मन में ईश्वर के प्रति अनुराग है परन्तु संसार की वस्तुओं के लिए वैराग्य है। राग और द्वेष का नाम ही संसार है। इन दोनों के त्याग से वैराग्य दृढ़ होता है।

वैराग्य के साथ अभ्यास करो यानि प्रभु के चरणों से प्रेम करो। अनुरागी बनो, प्रेम करो। जब अभ्यासी का विवेक और वैराग परिपक्व हो जाता है तो जब वह प्रभु से प्रेम करता है तो उसका मन अधिक इधर–उधर भागेगा नहीं। मन क्यों इधर–उधर भागता है इसे समझने के लिए पूज्य गुरुदेव की पुस्तक 'अभ्यास में मन न लगने के कारण व उपाय' को पढ़े। परन्तु विवेक और वैराग्य का साधन करना ही पड़ेगा। इसके बिना साधना हो ही नहीं सकती। चैतन्य महाप्रभु का कथन है कि कोई भी साधक साधना में सफल नहीं हो सकता जब तक वह वैराग्य की साधना नहीं करता।

हम यह चाहते है कि हमारे संसार के सारे काम पूरे होते रहें, मानों जैसे भगवान हमारा नौकर हो। हमारे मुकदमे ठीक हो जाएँ, बच्चे पास

हो जाएँ उनकी नौकरी लग जाए, उनकी संतान हो जाए, यही बातें हम हर वक्त सोचते रहते हैं। अगर कोई काम नहीं होता तो हम निराश हो जाते हैं। निराश मन एकाग्र नहीं हो सकता। जब तक विवेक और वैराग्य सहज नहीं हो पाएगा, हँस गति नहीं हो जाएगी, मन एकाग्र नहीं होगा। और इसके साथ चाहिये – प्रभु के चरणों के लिए व्याकुलता, विरह। ऐसी दशा हो जाये कि उसके बिना हम सब कुछ भूल जाएँ। हम खाना, पीना, सोना, अच्छे वस्त्र पहनना, मित्रों की संगति, सब कुछ भूल जाएँ। केवल प्रभु के चरणों का स्नेह ही रह जाए।

जब इन तीन बातों का – विवेक वैराग्य व अनुराग का अभ्यास करते हैं तब मन सहज में ही स्थिर होने लगता है। विनोबा जी कहते हैं लोग बाग कहते हैं कि हमारे विचार स्थिर नहीं होते हैं। वह कहते हैं कि 'यह मुझे समझ नहीं आता। मुझे दिक्कत होती है जब मुझे कोई विचार उठाना होता है क्योंकि मैं तो निरन्तर मौन रहता हूँ।' वह ठीक कहते हैं। बहुत महान और ज्ञानी संत थे। उन्होंने विवेक और वैराग्य की साधना की थी।

हम लोग प्रायः हर समय इन्द्रियों के भोग में फँसे रहते हैं – आँख हर वक्त अच्छी बुरी प्रतिक्रिया करती रहती है, कान भलाई बुराई सुनते रहते हैं, ऐसे ही ज़बान से भी करते रहते हैं। खाने पीने में भी कोई विवेक नहीं है। मन हमेशा संकल्प विकल्प उठाता रहता है। इस पर कोई नियंत्रण नहीं है। विवेक जब सध जाता है तब व्यक्ति वही विचार उठाता है जिसकी आवश्यकता होती है। तो संतों के उपदेश के अनुसार विवेक और वैराग्य की साधना निरन्तर होनी चाहिए ताकि हमारा स्वभाव बन जाए।

आत्मा की, परमात्मा की, गुरुदेव के चरणों की ओर बढ़ें, अन्य सब त्याग कर दें। यह हमारी सहज अवस्था बन जाए। संसार की सेवा करें परन्तु प्रेम भाव से ईश्वर की सेवा समझकर। संसार को भी ईश्वर का रूप समझकर, ईश्वर की ही सेवा समझकर, सबके साथ व्यवहार करें। अब तो यदि हम किसी की सेवा करते हैं या प्रेम करते हैं तो आशा रखते है कि इसका फल हमें मिलेगा। यदि हमें सेवा का फल नहीं मिलता है तो निराशा होती है। यह तो ईश्वर सेवा नहीं है। ईश्वर हमारा पालन

पोषण करता है क्या वह हमसे आशा रखता है, क्या हमारे माता–पिता हमसे कोई आशा रखते हैं ?

साधना के महत्त्व को अच्छी तरह समझना चाहिये। अपने जीवन को कला की तरह व्यतीत करना चाहिए। हम पशु–पक्षी वनस्पति नहीं हैं जिनमें चेतना नहीं हैं। हमें विवेक भी मिला है परन्तु हमने अपने भोगों में रमे रहने के कारण विवेक का विनाश कर दिया है। विवेक गया तो वैराग्य भी गया। जब विवेक और वैराग्य सध जाता है तब ध्यान का उदय होता है। हम आत्मा के आनंद की अनुभूति करने लगते हैं और उस आनंद की अनुभूति के आगे संसार के सब पदार्थ फीके लगने लगते हैं।

विवेक और वैराग्य के सध जाने से आत्म–स्वरूप के दर्शन हो जाने से स्थिरता आ जाती है और साधक यही चाहता है कि मेरी आत्मा परमात्मा में मिल जाए। ध्यान दृढ़ हो जाता है और जब निरन्तर इस अवस्था में रहता है तब मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। मोक्ष के अर्थ हैं जितने बन्धन हैं उनसे मुक्त हो जाना। अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार हमें बाँधते हैं, जब ज्ञान में स्थिरता आ जाती है तब इन बन्धनों से हम मुक्त हो जाते हैं। संस्कार हमें बाँधते हैं पर ज्ञान की अग्नि में धीरे–धीरे खत्म हो जाते हैं। जब ज्ञान का सूर्य विकसित होता है तब मोक्ष के आयाम में प्रवेश करते हैं, वहाँ कोई बंधन नहीं है।

वास्तव में आत्मा–परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। साधक की स्थिति सूर्य की तरह हो जाती है। परमात्मा के गुण उसमें अप्रयास आ जाते है। परमात्मा हमारा पालन पोषण करने की व्यवस्था या प्रबंध ऐसे ही जीवन मुक्त साधकों के माध्यम से करवाता है जो निरन्तर सारे विश्व की सेवा करते हैं।

हम सारा दिन बातचीत, वाद–विवाद, तर्क–वितर्क करते रहते हैं पर हमारा मन नहीं भरता। परिवार में सारा दिन स्त्री, बच्चों, पड़ोसियों से लड़े और साधना करने बैठे फिर कहते हैं कि साधना में मन नहीं लगता। तो कैसे लगेगा ? गुरु महाराज कहा करते थे कि साधना तो 24 घंटे की साधना है, 15–20 मिनट बैठने की नहीं। अपने जीवन को साधना का रूप देना है, यज्ञ का रूप देना है। सारा जीवन प्रभु के चरणों

में एक आहुति है। प्रातःकाल से रात्रि तक यहाँ, तक कि सोते में भी ईश्वर की याद बनी रहनी चाहिए।

हमारा मन प्रभु से दूर भागता है। इन्द्रियों के भोगों का यह रसिया है। ईश्वर के रस को छोड़ देता है। सामान्यतः सभी व्यक्तियों की यही हालत है। अधिक बोलना अच्छा लगता है, बुराई सुननी व करनी अच्छी लगती है और चाहते हैं कि हमे परमात्मा मिल जाये– यह कैसे हो? परमात्मा तो दूर है। हमें तो पहले मन को स्थिर करना है और संतो या गुरुजन ने जो साधन बतलाया है वह करना है अर्थात् विवेक, वैराग्य अनुराग का अभ्यास। बार–बार प्रेम से परमात्मा के चरणों में जाना अभ्यास है।

गिरना तो संभव है परन्तु मनुष्य को शक्ति मिली है, उसे उठना चाहिए, पुनः प्रभु के चरणों में जाने का प्रयास करना चाहिए। ये दोनों बातें बहुत सरल लगती है लेकिन इनका अभ्यास अपने सुख के लिए करिए। आप सुखी हो जाएंगे, आनंदमय हो जाएँगे तो संसार भी आपको आनंदमय लगेगा। आप भीतर में जब दुखी होते हैं तो सब व्यक्तियों में आप दोष देखते हैं। जिसके भीतर में आत्मिक आनंद उत्पन्न हो गया है वह किसी पर भी शंका नहीं करता। वह निर्मल मन से निर्भय अवस्था में रहता है। जब वह परमात्मा से तद्रूप है तो उसको भय कैसा? पंजाब में एक सूफ़ी हुए हैं। बुल्लेशाह – बुल्ले ज़ात के माली थे। आपसे पूछा गया कि प्रभु की प्राप्ति कैसे करें। हँस पड़े कहने लगे पौधे को इध ार से उठाया उधर लगा दिया। मन को प्रभु के चरणों में लगा दिया तो प्रभु में लग गया, इसमें क्या कठिनाई है। हकीकत यही है कि मन को अनात्मिकता से हटाकर विवेक के साथ आत्मा में लगाओ।

महर्षि रमन कहते हैं कि किसी की पूजा मत करो अपनी पूजा करो। भगवान भीतर में बैठे हैं, आप अपनी ही पूजा करो। किसी खोज की ज़रूरत नहीं क्योंकि प्रभु भीतर में हैं। अपनी सुरत को आत्मा में विलय कर दो। मन को हटाकर अपने ही सच्चे स्वरूप के दर्शन करो।

जैसे डाक्टर साधारण सी दवाई मरीज़ को दे तो उसे विश्वास नहीं आता है। इसी प्रकार सीधी सादी बात कहें तो कोई सुनता नहीं। जो बुल्लेशाह ने कहा उससे कुण्डलिनी भी जाग्रत हो जाती है और प्रभु के

दर्शन भी हो जाते हैं। कुण्डलिनी का मतलब है कि सुरत जो गणेश चक्र में फँसी हुई है वहाँ से निकलकर अपने निजी स्थान पर चली जाए। कुछ दिन अभ्यास करें तो यह भी संभव है। कठिनाई है मन को बनाने में।

यह मन इतना ढीठ हो गया है कि बात की सत्यता को समझता तो है परन्तु उसकी ओर ध्यान नहीं करता। मक्खी गन्दगी की ओर ही जाती है पर मधुमक्खी मधु की तरफ़ जाती है और वहीं किनारे पर रहती है, फँसती नहीं है। मनुष्य की हालत साधारण मक्खी की तरह है। इस वृत्ति को बदलना है। इसके लिए शक्ति चाहिए तभी तो भगवान अर्जुन को कहते हैं कि तू क्षत्रिय बनकर लड़ यानी प्रेरणा दी है कि क्षत्रिय के गुणों को धारण करें।

तामसिकता का त्याग करो, राजसिक गुणों को अपनाओं, फिर सात्विकता को पकड़ो, और फिर तीनों गुणों को छोड़ दो। और यह संभव है – विवेक और वैराग्य की साधना का अभ्यास करने से।

• • •

शोक प्रस्ताव

कार्यकारिणी की बैठक में पारित शोक प्रस्ताव

(दिनांक 3 जुलाई 2012, प्रातः10 बजे, गाज़ियाबाद)

आज ऐसी गुरु पूर्णिमा का दिन हम सबके जीवन में आया है कि हमारे पूज्य गुरुदेव परमसंत डाक्टर करतार सिंह जी महाराज अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर परमधाम को प्राप्त हो गए हैं और हम सब उनके दर्शनों से वंचित हैं। फिर भी हमारा यह विश्वास है कि उनकी कृपा दृष्टि हम सबको सतत प्राप्त हो रही है यद्यपि सांसारिक प्रभावों के कारण हम उसका पूर्ण अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।

गत् 13 जून 2012 को उनका 100वां जन्मदिन था जो कि हम सभी के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सौभाग्यशाली दिन था, जिसको बहुत धूमधाम से मनाने की योजना हमारा सत्संगी परिवार कबसे बना रहा था, परन्तु गंभीर रूप से बीमार होने के कारण गुरुदेव अस्पताल के आई. सी. यू. में रहे और कुछ सत्संगी भाई वहीं उनकी सेवा में रहते हुए उनके स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रार्थना करते रहे। दूसरी तरफ 24 घंटे का ओम शान्ति जाप उनके घर पर चल रहा था। इसके अलावा गुरुग्रंथ साहब का पाठ गाज़ियाबाद सैक्टर–10 स्थित गुरुद्वारे में हुआ, तत्पश्चात लंगर का आयोजन भी किया गया। शायद गुरुदेव को ऐसा ही सादगीपूर्ण कार्यक्रम पसंद था। 15 जून दोपहर 12.45 पर पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन हो गए। नियति के इस नियम को नतमस्तक हो हमें स्वीकार करना ही होगा।

पूज्य गुरुदेव का सम्पूर्ण जीवन त्याग और तपस्या की एक ऐसी मिसाल है जो हम सभी के लिए आजीवन प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

आपका जन्म 13 जून 1912 को अमृतसर में एक सम्पन्न सिक्ख परिवार में हुआ। आपकी 16 वर्ष की छोटी उम्र में ही आपके पिता सरदार संत सिंहजी साहब ईश्वर को प्यारे हो गए। तभी से आप पर परिवार की पूर्ण जिम्मेदारी आ गई, परन्तु आपने तब भी अपनी पढ़ाई जारी रखी और पंजाब में पोस्ट मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1947 में विभाजन के बाद आप दिल्ली आ गए और आयकर विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर कार्य करते हुए, आपने बी.ए. और लॉ की परीक्षाएं भी पास कीं। फिर कुछ समय बाद नौकरी छोड़कर आपने नेशनल होम्यो स्टोर्स, जो कि दिल्ली के फ़तेहपुरी में है, अपने एक मित्र से खरीद लिया। यहाँ आपने भारत में पहली बार 'विलियम श्वेब' की दवाइयों का आयात कर उनका थोक व्यवसाय भी किया। यहाँ आप इलाज करते थे तथा होम्योपैथिक दवाइयां भी दिया करते थे।

सन् 1970 में पूज्य दादा गुरुदेव डाक्टर श्री कृष्णलालजी महाराज के निर्वाण के बाद आप पूरी तरह से सत्संग सेवा में व्यस्त हो गए और अपने व्यवसाय को अपने परिवार के सदस्यों को सौंप दिया।

पूज्य गुरुदेव डाक्टर करतार सिंह जी महाराज अपने गुरुदेव के अत्यंत प्रिय शिष्य थे व उन पर जी जान से कुर्बान थे। सच कहा जाए तो वे अपने गुरुदेव के मुराद शिष्य थे। उनके किसी भी आदेश का तत्काल पालन करते थे। आपका व्यक्तित्व रामाश्रम सत्संग परम्परा के अनुरूप अत्यंत करुणामय और दैवीय गुणों से परिपूर्ण था। आप सेवा और दीनता की एक ऐसी जीवंत मिसाल थे कि जो भी आपके पास आता था उसे ऐसा प्रतीत होता था कि गुरुदेव उसको ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। उनकी प्रवचन प्रसादी में सभी धर्मो और पंथों के महापुरुषों की देन का वर्णन मिलता है। जहाँ किसी विशेष पर्व पर गुरुग्रंथ साहब का पाठ होता तो कभी रामायण का अखंड पाठ रखा जाता था। भण्डारों का आयोजन किया जाता, जिसका आनंद हम सभी को प्राप्त होता था। आपने शास्त्रों के अद्‌भुत ज्ञान

से अपने प्रवचनों में जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला और इस प्रकार हमारा जीवनपर्यन्त मार्गदर्शन करते रहे। आपका विशेष अनुरोध था कि प्रत्येक सत्संगी गीता के 12वें अध्याय के 13 से 20 तक के श्लोकों का नित्य पाठ करे और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करे।

आपने पूर्ण समर्पित होकर अपने जीवन के 42 वर्षो से भी अधिक समय तक सत्संग की सेवा की, आपके संरक्षण में रामाश्रम सत्संग परिवार का दिन प्रतिदिन विस्तार होता गया और आज दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा तथा महाराष्ट्र तक सभी प्रदेशों में सत्संग की कई शाखाएं स्थानीय अधिकारियों के संरक्षण में कार्यरत हैं। गुरुदेव को दीनता अत्यंत प्रिय थी, वे कहा करते थे, ''चाहे आप कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना ही होगा''।

आज हमारे लिए उनके यही वचन उनका आदेश, उपदेश और उनका मार्गदर्शन हैं। हम सब उनके आदेशों और उनके आदर्शों के अनुसार अपना जीवन बनायें ताकि उनकी कृपा और प्यार के सच्चे अधिकारी बन सकें। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी और यही सत्संग परिवार की सेवा भी होगी।

गुरुदेव के चरणों में शत्–शत् नमन।

• • •

विवेक विचार

शान्ति एवं परमानंद की प्राप्ति का माध्यम

जीव मात्र आनंद की इच्छा करते है। हम सभी हमेशा आनंद की खोज में लगे रहते हैं, पूर्ण, नित्य, एवं अखण्ड आनंद चाहते हैं और हम आनंद के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते। सब आनंद से ही निकले हैं, आनंद में ही निवास करना चाहते हैं, एवं आनंद में ही लौट जाना चाहते हैं। हम यह भूल गए हैं कि वास्तविक आनंद है क्या और वह कहाँ है, तथा किस तरह प्राप्त हो सकता है। इसी से हम सभी स्त्री–स्वामी, पिता–पुत्र, मित्र–परिवार, धन–वैभव, सुख–सम्पत्ति, मान–प्रतिष्ठा आदि की मोहमाया के विनाशी पदार्थो में आनंद की खोज करते रहते हैं। इसी भूल को मिटाकर हमें सच्चे आनंद के दर्शन कराने के लिए पूर्णानंदमय प्रभु मनुष्य शरीर में अवतरित होते हैं।

वास्तविक चिन्मय आनंद स्वरूप की प्राप्ति का एक सहज सुलभ माध्यम (गुरु के रूप में) उपलब्ध है। गुरु ही भक्त के जीवन का आधार है और गुरु ही भक्त के मोक्षदाता हैं। श्री गुरु, भोक्ता है, भक्त भोज्या है। श्री गुरु सेव्य है, तथा भक्त सेवक। गुरु आराध्य हैं एवं भक्त आराधक है। कहीं–कहीं इसके ठीक विपरीत है, श्री गुरु भोग्य हैं, सेवक हैं, आराधक हैं, तथा भक्तजन, भोक्त, सेव्य और आराध्य हैं।

शिष्य को प्रसन्न, सुखी देखना तथा करना ही सत्गुरु का एकमात्र लक्ष्य रहता है। गुरु कृपा के इस विलक्षण लाइ का सौन्दर्य सजाया–सवाँरा नहीं है वरन् स्वयं सिद्ध है, समस्त यश, समस्त श्री और सम्पूर्ण ऐश्वर्य इन्हीं के आश्रित है। ऐसे कृपालु गुरु की कृपा के सहारे, परमार्थ के पथ पर चलते हुए, हम अपना शान्ति एवं परमानंद प्राप्ति का उद्देश्य पूर्ण कर सकते हैं।

सिद्ध संत श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार रचित राधा माधव चिन्तन से साभार उद्धृत, परमानंद एवं शान्ति की प्राप्ति हेतु कुछ साधन प्रस्तुत किए जाते हैंः–

(1) जगत के सारे कार्य भगवान श्री गुरुदेव की चरण–सेवा के भाव से करना।

(2) किसी से मोह ममता न रखकर, सारी ममता गुरु चरणों में रख देना।

(3) अभिमान, मद, गर्व, आदि को आश्रय न देकर सदा अपने को अकिंचन, गुरु के सामने दीनातिदीन मानना।

(4) गुरुप्रेम को ही जीवन का परम उद्देश्य समझकर और इसे प्रत्येक हालत में हमेशा लक्ष्य मानकर सब काम करना है।

(5) जगत का स्मरण छोड़कर नित्य निरन्तर, श्री गुरु भगवान के गुण, स्वरूप, नाम आदि का प्रेम के साथ स्मरण करना।

(6) जहाँ तक सम्भव हो, सहज ही भोग त्याग तथा भोगशक्ति का त्याग करना जगत के किसी भी प्राणी अथवा पदार्थ में राग न रखना।

(7) सम्मान, पूजा, प्रतिष्छा को विष समान समझकर उनसे सदैव बचे रहना। बुरा कार्य न करना, अपने अपमान को अमृत समान मानकर उसका आदर करना।

(8) अपने सुख की इच्छा, निज इन्द्रियों की तृप्ति अपने मन की भोग, मोक्ष की इच्छा का त्याग करके भगवन् श्री गुरुदेव को ही प्रियतम रूपसे भजना था प्रत्येक कार्य उनकी प्रसन्नता हेतु ही करना।

किसी भी प्राणी में द्वेष–द्रोह न रखकर, सबमें गुरु की अभिव्यक्ति मानकर सबके साथ विनय का, उनके सुख–हित–सम्पादन का बर्ताव करना। सबका मान–सम्मान करना, पर स्वयं कभी न चाहना, और न स्वीकार करना।

लौकिक अभ्युद्य, आत्मसाक्षात्कार या भगवत प्राप्ति– सभी के लिए सांसारिक इच्छा–अभिलाषाओं के त्याग की आवश्यकता है। इन्हें त्यागे बिना गुरु प्रेम या प्रभु प्रेम में कभी सफलता नहीं मिलती। प्रेम में ग्रहण या प्राप्ति का इतना महत्त्व नहीं है, वह लेन–देन का व्यापार नहीं है, वह तो समर्पण है। प्रेम देना जानता है, लेना नहीं। जहाँ प्रेम के लिए ही प्रेम हो, यही सच्चा प्रेम है, जहाँ कुछ पाने की इच्छा है, वह प्रेम नहीं है, वह काम है।

अतः शान्ति एवं परम–आनंद प्राप्ति का एक सबसे सरल सुलभ साधन है श्री गुरु चरणों में अनन्य, अगाध प्रेम। गुरु प्रेम के बिना साध य लक्ष्य (परमानंद) की पूर्ण प्राप्ति संभव नहीं है।

● ● ●

राम संदेश के नियम

1) आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

2) राम-संदेश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छांट करने अथवा छापने, या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।

3) राम संदेश का वर्ष जनवरी से आरम्भ होता है। चन्दा फ़िलहाल 20/- (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर जनवरी-फ़रवरी के अंत तक अवश्य भिजवा दें।

4) पत्र व्यवहार करते समय कृपया अपना ग्राहक नम्बर लिखें और पता लिखा कार्ड या लिफ़ाफ़ा भी अवश्य भेजें। पता बदलने की सूचना, डाकघर के पिन कोड सहित निम्न पते पर :-

डा. एस. के. सक्सेना, 9 नव युग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

कृपया तुरन्त भेज दें - अन्यथा आपकी प्रति वापस आ जाती है या 'विलीन' हो जाती है।

5) राम संदेश के समस्त ग्राहकों की प्रतियाँ बड़े ध्यान से हर बार नौएडा, सैक्टर 34 के डाकघर में पोस्ट की जाती हैं। यहाँ तक की ज़िम्मेदारी हमारी है, आगे की नहीं। यदि 1,3,5,7,9 और 11वें महीने के अंत तक भी राम संदेश की प्रति न पहुँचे तो कृपया उसकी सूचना **डा. एस. के. सक्सेना, 9 नवयुग मार्केट, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009,** के पते पर अवश्य दें।

राम संदेश

रजि. ऑफ़िस
9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड,
ग़ाज़ियाबाद - 201009

सम्पादकीय पता
डा. एस. के. सक्सेना
9 नवयुग मार्केट,
ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र. 201009

PERIODICAL

ग्राहक संख्या, नाम, पता

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नौएडा-201301